प्रथम अध्याय

ज्ञानरंजन : व्यक्ति और साहित्यकार के रूप में

1.1 व्यक्ति ज्ञानरंजन : जीवनरेखा : तथ्यों के आईने में :

ज्ञानरंजन का नाम आते ही हमारे सामने उस कहानीकार का अक्स उभरता है, जिसने बहुत कम लिखकर भी बहुत अधिक प्रसिद्धि पाई। वे साठोत्तरी कहानी के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षरों में से एक रहे हैं। वे हिंदी कहानी की अविरल प्रवहमान स्रोतस्विनी को दिशा देने वाले कहानीकारों में से एक माने जाते हैं, जिनके कम परंतु सशक्त लेखन ने हिन्दी कहानी के कोष को समृद्ध किया।

ज्ञानरंजन का जन्म 21 नवंबर सन् 1936 को महाराष्ट्र के अकोला नामक स्थान पर हुआ था, जो कपास उत्पादन से जुड़ा हुआ काली मिट्टी का अंचल है। वे लिखते हैं–"यद्यपि अकोला मेरा जन्म स्थान है, पर मैं अपने जन्म-स्थान को एंटिक कागज पर छपे हुए पते के रूप में ज़्यादा नहीं जानता था।"[1] इस उद्धरण से ही स्पष्ट है कि ज्ञानरंजन के जीवन का कुछ हिस्सा ही अकोला में बीता है। उनके पिता रामनाथ सुमन एवं माता सीतादेवी हैं। सुमनजी की चार संततियों में ज्ञानरंजन का स्थान दूसरा था। ज्ञानरंजन से बड़े उनके भाई श्रीरंजन हैं तथा उनसे छोटी एक बहिन मृदुला तथा उनसे भी छोटे उनके एक भाई चित्तरंजन हैं।

ज्ञानरंजन के पिता सुमनजी पर गांधीजी का बड़ा गहरा प्रभाव था। वे उन लोगों में से थे, जिन्होंने गांधीजी के मूल्यों को मात्र सिद्धांत में ही नहीं व्यवहार में भी वरीयता दी थी। प्रगतिशीलता उनके परिवार की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है। गांधीजी के प्रभाव के कारण ही मूल रूप से बिहार के आरा जिले से जुड़े एक कायस्थ (श्रीवास्तव) परिवार के संवाहक शत्रुघ्न प्रसाद के पुत्र रामनाथ सुमन ने जाति और धर्म की जंजीरों को तोड़ने कार्य किया। इसी कारण

उनके परिवार में जातिसूचक (उपाधि की ओर संकेत करने वाले) शब्द का नामों में कहीं प्रयोग नहीं हुआ। इसके अलावा इनके परिवार ने जाति-पांति का विरोध अपने वैवाहिक संबंधों के द्वारा भी किया। यह क्रियात्मक विरोध हमें उनके परिवार में हुए अंतर्जातीय तथा अंतर्भाषीय वैवाहिक संबंधों में देखने को मिलता है। सुमनजी वाराणसी के निवासी थे जबकि ज्ञानरंजन की माँ सीतादेवी बुंदेलखंड की रहने वाली थीं। स्वयं ज्ञानरंजन ने भी इस परंपरा का संवहन किया। उन्होंने एक भद्र गुजराती परिवार से वैवाहिक संबंध स्थापित किया और पत्नी के रूप में सुनयनाजी प्रेम-विवाह के माध्यम से उनके जीवन में प्रवेश कर गयीं। ज्ञानरंजन के परिवार में पति-पत्नी के अलावा उनके बेटे शांतनु और बेटी वत्सला भी हैं।

सुमनजी एक कुशल लेखक-आलोचक होने के साथ-साथ एक महान् स्वतंत्रता-सेनानी भी थे। वे स्वभाव से ही घुमक्कड़ी तबीयत के व्यक्ति थे। "उन्होंने पूरे देश को घूमा-देखा था और कच्ची उम्र से ही मुझे (ज्ञानरंजन को) यायावरी सिखाई। दो बार पूरा राजस्थान और उड़ीसा दिखाया।"[2] इसके अलावा वाराणसी, अजमेर, दिल्ली और इलाहाबाद में युवावस्था तक का, उनके जीवन का एक हिस्सा बीता।

ज्ञानरंजन का बचपन और किशोरावस्था का अधिकांश समय अजमेर, दिल्ली, वाराणसी में बीता था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा भी इन्हीं स्थानों पर हुई थी। स्नातक तथा उच्चतर शिक्षा उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्राप्त की।

ज्ञानरंजन ने अपनी आर्थिक आवश्यकताओं के कारण सन् 1960 में जबलपुर के 'जी. एस. कॉलेज ऑव कॉमर्स एण्ड इकोनॉमिक्स' के स्नातकोत्तर विभाग में हिन्दी के प्रवक्ता की नौकरी स्वीकार की। यहाँ इन्होंने सन् 1996 तक अध्यापन-कार्य किया। वे यहाँ के एक महत्त्वपूर्ण शिक्षक माने गए तथा जबलपुर के गैर-साहित्यिकों के लिए वे एक लेखक से अधिक एक अध्यापक हैं।

ज्ञानरंजन ने डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. धर्मवीर भारती, डॉ॰ उदयनारायण तिवारी, श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी तथा श्री फिराक गोरखपुरी से साहित्य की विविध विधाओं का उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त किया था। उन्होंने डॉ. धर्मवीर भारती के निर्देशन में पी एच. डी. की उपाधि के लिए "उपन्यासों के चरित्र एवं उनकी चरित्र-वृत्तियाँ" विषय पर पंजीकरण भी करवाया। वे भारतीजी के प्रथम तथा अंतिम शोध-छात्र थे।

1.1.1 जीवनरेखा : प्रकृति एवं प्रवृत्ति के आईने में :

ज्ञानरंजन का जन्म एक मध्यवित्त परिवार में हुआ था। वे सामान्य से मध्यवर्गीय परिवार में पैदा हुए किसी भी शिशु के समान ही शैशव के उपेक्षित रूप को देख चुके थे। उनके स्वभाव ने इसी कारण अंतर्मुखी रूप धारण किया। सामान्यतः वे भीड़ से कतराया करते थे। उनका बचपन गुमनामी तथा शर्मीलेपन का समाहार था। इसी संदर्भ में उनके मित्र श्री राजेन्द्र शर्मा ने लिखा है– "ज्ञान के पिता स्वर्गीय रामनाथ सुमन एक प्रख्यात लेखक तथा गांधीवादी थे, अतः अपने परिवार में उन्होंने कठोर अनुशासन बना रखा था।"[3] संभवतः इन्हीं तथ्यों ने ज्ञानरंजन के चरित्र तथा उनकी प्रवृत्ति के निर्माण में अहम् भूमिका निभाई हो। ज्ञानरंजन के अनुसार-"मैं दब्बू था। दुबककर निकलता था। .....

..... .फुटबॉल होती पर मुहल्ले में एक ही फुटबॉल थी। जब वह फट जाती या बड़े नाले में गिर जाती तो सब देखने और खेलनेवाले बैठकर उदास होते थे। मैंने इन बातों को क्यों महसूस किया। इसलिए कि मैं दब्बू था और मनहूसियत को ताड़ लेता था। फिर मैं भी मनहूस हो गया।"[4] अपनी इसी प्रवृत्ति के संबंध में वे विद्यालय में बीती अपनी ज़िन्दगी (बचपन) के हिस्से को आधार बना कर कहते हैं–"मैं तो काफ़ी दीनदयाल टाइप का बच्चा था, इसीलिए मुसीबतें मेरे ऊपर कम आईं, पर रेखाओं से बाहर शरीर निकालने वाले बच्चों की शामत तो आती ही थी।"[5] अर्थात् वे क्षीणकाय ("दूध पीते दुबले"[6]) थे।

ज्ञानरंजन के व्यक्तित्व के निर्माण में उनके घर की भी बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। उनमें यह प्रकृति मध्यवर्गीय घरों की जीवनशैली की प्रतिक्रिया स्वरूप पैदा हुई थी। वे स्वयं ही लिखते हैं–"मेरे या किसी के लिए भी बचपन में केवल दो ही ज़गहें होती हैं, जिनका एक बच्चे को सामना करना होता है। एक घर और दूसरा स्कूल। मेरे लिए भी यही दो जगहें थीं।"[7] वे अपनी यायावरी प्रवृत्ति के संदर्भ में कहते हैं–"मेरे घर के तीन-तरफ़ बरामदा और एक तरफ़ आँगन था। यह घर जैसा भी रहा हो, पर इसमें बाहर जाने के लिए पाँच दरवाजे थे। यह घर गनीमत है जेल की डिजायन से नहीं बना था। इसकी भवन-कला का जन्म चोर-डाकुओं या चरित्रहीन हो जाने के भय से नहीं उपजा था। इसके नक्शे में आर्थिक और सांप्रदायिक दिमाग भी नहीं था। इस खुलेपन के कारण ही शायद मैं बाद में एक तरह के जीवन का आलोचक बना और दूसरी तरह के जीवन का समर्थक।"[8]

ज्ञानरंजन के व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य बचपन से ही उनमें दिखने लगा था। शैशवकाल की कई प्रवृत्तियाँ उनमें आजन्म बनी रहीं। वे स्वयं लिखते हैं–

"लेकिन बचपन बड़ा गड्डमड्ड था, बशर्ते कि आज की सजग निगाह उस पर न डाली जाए। बचपन से ही जीवन की राह में गड्ढे आने लगे थे। जैसे घर के अंदर ही एक मंदिर था। मंदिर मेरे जीवन के बाहर था।"[9] ज्ञानरंजन की यह नास्तिक प्रवृत्ति युवा होने पर विकसित होती गयी। वे इसीलिए लिखते हैं–"मैंने खून या उसकी गर्मी को महसूस नहीं किया था। बारबारी में दुर्गा की मूर्ति को देखकर भी हमें लावण्यमय लगता था। काली की मूर्ति को मैंने हमेशा हिप-हिप-हुर्रे अंदाज में देखा या अजायब रूप से। अभी तक किसी बात ने रक्तचाप नहीं बनाया।"[10]

ज्ञानरंजन के भीतर विकसित हो रहे इन प्रतिक्रियात्मक तत्त्वों ने उनके भीतर बाहर की दुनिया के प्रति एक विशेष आकर्षण जगाया। इस आकर्षण की उत्पत्ति का एक और कारण भी था-ज्ञानरंजन को उनके पिता से मिली हुई यायावरी प्रवृत्ति। वे कहते भी हैं- "मेरा बचपन अकोला, अजमेर और दिल्ली होते हुए इलाहाबाद पहुँचा था।"[11] इसी आकर्षण के फलस्वरूप वे अन्यत्र कहते हैं–"मुझे पता है बरसों तक सड़क से अज्ञात और रोमांचकारी चीज़ मेरे लिए कोई दूसरी नहीं थी। यह सड़क कहाँ जाती है और वो और सारी सड़कें किधर जा रही हैं, यह मन मसोसनेवाली उत्सुकता थी।"[12]

युवा ज्ञानरंजन आवारागर्दी के लिहाज से बहुत महत्त्वपूर्ण थे। वे देर रात घर लौटते थे। उन्हें घर से दूर रहना ही प्रिय लगता था। इसका कारण था सुमनजी की अनुशासनप्रियता तथा उनका गांधीवाद के प्रति अतिशय लगाव। इधर ज्ञानरंजन में समाजवादी प्रगतिशील चेतना के कारण इन चीज़ों के प्रति विद्रोह ने जन्म लिया। वे विवादों से दूर रहने के लिए देर रात घर आने लगे। सुमनजी गांधीवाद के समर्थक होने के कारण खादी के प्रति निष्ठावान थे। उनके

घर मिल के कपड़ों पर प्रतिबंध था, परन्तु वे अपने पुत्रों-पुत्रियों पर अपनी यह इच्छा थोपते नहीं थे। ज्ञानरंजन पोशाक के संदर्भ में स्नातकोत्तर तक खादी के कुर्ते या पायजामे में रहे। "संभव है इसका कारण यह रहा हो कि वे अपनी जरूरतों को कम से कम रखने का प्रयास कर रहे हों.....।"[13]

विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करने के बाद ही युवा ज्ञानरंजन के भीतर का स्रष्टा आकुल-व्याकुल हो उठा। "यूनीवर्सिटी में पहुँच कर ही ज्ञान के भीतर सोई हुई इकाई ने करवट ली। इन्हीं दिनों उसका अस्तित्व बाहर आने के लिए मचल पड़ा। इसी करवट ने 'अरुण शलभ' नामक एक साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संस्था को जन्म दिया।"[14] ज्ञानरंजन में इन चीज़ों ने घर की व्यवस्था, खानपान, विचार, संस्कृति के प्रति विद्रोह पैदा किया, परंतु वे 'क्रांतिकारी' नहीं थे। इन विपरीत स्थितियों में उनका उनके पिता से वैचारिक मतभेद बना रहा, संभवतः यह दो पीढ़ियों का भी द्वंद्व था। इस संघर्ष ने उन्हें कहीं अधिक परिपक्व बनाया। वे कहीं अधिक मजबूत बने भीतर ही भीतर। "यह मजबूती ज्ञानरंजन में है। जो गलत है उसका विरोध हर क़ीमत पर करने का दम है। और ऐसा करते हुए ज्ञान कोई प्रभाव मंडल भी निर्मित नहीं करते।"[15] इसीलिए उनके बारे में हरिशंकर परसाई का कहना है कि "ज्ञान में-व्यक्ति में और रचना में-धीरज, ठोसपन, विश्वास, साहस और तेजस्विता है। जीवन को वे पूर्णता के साथ जीने के कायल हैं। पर छोड़ देने में भी ज्ञान को कोई कठिनाई नहीं।"[16]

ज्ञानरंजन की एक विशेष प्रवृत्ति है कि वे किसी भी काम में पीछे रहना पंसद नहीं करते। वे सब कुछ जानने समझने में विश्वास करते हैं। वे स्वभाव से ही 'एडवेंचरस' व्यक्ति हैं। वे प्रारंभ से ही मौजू स्वभाव के व्यक्ति रहे हैं। इसी कारण वे मौज-मस्ती को बहुत ही महत्त्व देते हैं। किंचित यही कारण है,

जो उनके स्वभाव को 'कॉमिकल टच' देता है या उनके स्वभाव को ह्यूमरस' बनाता है । इसकी छाप उनके साहित्य पर भी है ।

ज्ञानरंजन अपने बेहद यारबाज स्वभाव के लिए भी जाने जाते हैं । श्री राजेन्द्र शर्मा के अनुसार वे 'दोस्तों के दोस्त'[17] हैं । विश्वविद्यालय में अध्ययनकाल के पर्व पर उनके साथियों की एक लंबी सूची थी । ".....ज्ञान का एक 'ग्रुप' था । विजय शुक्ल, हरिशंकर, गणेश और ज्ञान । ये लोग शहर के 'मौलिक' या 'मूल' लोग थे ।"[18] उनके मित्रों में से एक श्री राजेन्द्र शर्मा लिखते हैं – "ज्ञान दोस्ती करता है तो उसे आख़ीर तक निभाता है जब तक कि कोई ख़ास बात न हो जाए और दोस्तों के लिए वह सीमा के बाहर भी चला जाता है, चाहे कितना ही नुकसान क्यों न हो ।"[19] ज्ञानरंजन की मित्रता तथा उनके सख्य भाव का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि वे मित्रता के संदर्भ में किसी भी सीमा को असंगत मानते हैं । श्री राजेन्द्र शर्मा ने लिखा है–".....दोस्ती में वह न तो आदमी की पोजीशन देखता है और न उसकी शैक्षिक योग्यता । उसका दोस्त कोई भी हो सकता है । उसे आज भी बहुत साधारण लोगों के बीच बैठ कर गप्पे लगाते हुए देखा जा सकता है । कभी-कभी तो सारा काम-काज छोड़कर उन्हीं के साथ मटरगश्ती में मशगूल हो जाता है लेकिन कभी भी उन पर अपने लेखक होने का रोब नहीं ग़ालिब करता और ना ही इस बात का एहसास दिखाता है कि उनके साथ रहकर उनके ऊपर एहसान-सा कर रहा हो । दर्जा बराबरी का होता है ।"[20]

ज्ञानरंजन मैत्री के संसार में अतिवादी भी हैं । उनका प्रेम और घृणा करने का एक विचित्र तरीका है । "ज्ञान जब दोस्ती करता है तो भरपूर करता है और नाराज होता है तो एकदम से नाराज हो जाता है । उसके नाराज होने का

तरीका भी निराला है । वह धीरे से बिना कोई कारण बताए उस व्यक्ति से संबंध विच्छेद कर लेता है कि उसे पता भी नहीं चलता ।"[21] मित्रता में उनका अतिथि-सत्कार भी अद्‌भुत है । "ठीक यही हाल उसकी मेहमाननवाजी का है और तरह-तरह के बहाने बनाकर दोस्तों को प्रकार-प्रकार की चीज़ें खिलाना उसके स्वभाव में शामिल है ।"[22]

ज्ञानरंजन प्रेम के क्षेत्र में अति संवेदनशील मनुष्य हैं । "ज्ञानरंजन में प्यार करने की अभूतपूर्व क्षमता है । प्यार करने के लिए वह हमेशा ताज़ादम और नरम-नरम-सा दिखाई देता है । उसका एक स्पर्श, एक गहन आलिंगन किसी को भी अभिभूत कर देने के लिए काफ़ी होता है ।"[23] ज्ञानरंजन में कभी भी प्रसिद्धि की भूख नहीं रही । वे नेपथ्य से संचालन करना पसंद करते हैं । काशीनाथ सिंह लिखते हैं–"मैंने किसी भी मंच पर उसे 'माइक' के आगे खड़ा नहीं देखा । अव्वल तो वह आयोजन को बाहर से देखेगा, सुनेगा और अंदर नहीं आएगा और आएगा भी तो कहीं भीड़ में या पीछे बैठा रहेगा । संयोजक वह हमेशा रहेगा लेकिन उसकी तरफ़ से दूसरा बोलेगा ।"[23 (i)]

ज्ञानरंजन अपने स्पष्ट नज़रिये के लिए भी मशहूर हैं । उनकी मित्रता एवं उनके स्वभाव के बारे में अकहानीकार रवीन्द्र कालिया का कहना है–"वह (ज्ञानरंजन) आपसे दोस्ती कर सकता है या नहीं कर सकता । वह उन लोगों में से नहीं है, जो दोस्ती का नाटक करते हुए हमेशा इस ताक में रहते हैं कि कब आपकी पीठ में छुरा भोंक दें ।"[24]

इतनी लोकप्रियता तथा मित्र-प्रेम प्राप्त करने पर भी ज्ञानरंजन भीतर से कहीं बहुत अकेले हैं । ".....ज्ञान की तमाम सरगर्मियों और गतिविधियों के बीच

आप पाते हैं- यह शख्स कही बहुत तन्हा है–चाँद की तरह । दोस्तों प्रशंसकों से घिरा है, लेकिन अकेला है । यह अकेलापन रूहानी भी हो सकता है ।"[25]

ज्ञानरंजन की नाराजगी भी विचित्र होती है । "ज्ञान का एक और रूप है– 'एंग्री यंग मैन' का रूप । परसाईजी ने लिखा है– "वे उत्तेजित भी होते हैं और बड़े उत्तेजित होकर कह भी देते हैं । वे तीव्र प्रतिक्रिया भी करते हैं ।"[26] वे हमेशा से सादगी पसंद व्यक्ति रहे हैं । किंचित यहां वे अपने पिता की गांधीवादी दृष्टि से प्रभावित लगते हैं । वे स्वेच्छया ही चमकीली दुनिया से दूर रहे हैं । दाढ़ी उनके व्यक्तित्व का एक ऐसा हिस्सा है, जो उन्हें भीड़ में अलग साबित करता है । उनके मित्रों ने विश्वविद्यालय में अध्ययन के दिनों में उन्हें दाढ़ी बढ़ाते देख उनका खूब मजाक उड़ाया और उसे कटवाने के लिए प्रेरित किया । ज्ञानरंजन ने जिद पकड़ ली कि यह दाढ़ी अब कभी न कटेगी; तब से आज तक वह उनके व्यक्तित्व का एक अभिन्न अंग है । इस प्रकार वे अपनी शर्तों पर ज़िन्दगी जीने वाले व्यक्ति के रूप में हमारे समक्ष उभरते हैं ।

1.2.1 साहित्यकार ज्ञानरंजन : परिवेश का प्रभाव एवं लेखक की निर्मिति :

स्वातंत्र्योत्तर भारत के लेखन का एक बहुत बड़ा हिस्सा ज्ञानरंजन की रचनात्मक सहभागिता का प्रमाण है । इस क्षेत्र में ज्ञानरंजन की दखल बड़ी ही प्रभावी रही है । यह सहभागिता ज्ञानरंजन के लेखक में तो है ही, उनके भीतर के संपादक, संगठनकर्त्ता एवं सांस्कृतिक कार्यकर्त्ता में भी देखने को मिलती है । "भारत से अंग्रेज साम्राज्यवादियों की विदाई के बाद की अर्धशती का एक विशाल आयतन प्रगतिशील लेखन व लेखक-संगठन, लघु पत्रिकाओं के राष्ट्रीय मंच व पहल और ज्ञानरंजन की अलग एवं शामिल हलचलों से आंदोलित रहा है । इस

पूरे स्पेस में एक हिस्सेदारी ज्ञानरंजन द्वारा लिखी गई पचास से कम कहानियों की है, जिनमें वह देश काल की बदलती संवेदन-छायाओं, रंगतों और ध्वनि लहरियों के साथ एक विशिष्ट यथार्यवादी लय के साथ मौजूद हैं।"[27]

कुछ साहित्यकारों ने उन्हें ढाई कहानियों का कहानीकार कहा है। वे ऐसा उनकी कहानियों की कम संख्या के कारण कहते हैं। उन्हें किंचित हिंदी कहानी के समारंभ एवं उसमें चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' के योगदान का ज्ञान नहीं है। गुलेरीजी ने मात्र तीन महत्त्वपूर्ण कहानियाँ लिखकर एक इतिहास का निर्माण किया। हिन्दी कहानी के इतिहास में वे उन्हीं के बल पर ध्रुवतारे की तरह चमक रहे हैं। यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि बाज़ारू पीत-पत्रिकाओं में अकूत मात्रा में कथा साहित्य प्रकाशित होता है परंतु हम उसे साहित्य की सीमा से बाहर मानते हैं। श्रेष्ठ साहित्य अपनी संख्या नहीं बल्कि अपनी गुणवत्ता के आधार पर श्रेष्ठत्व का अधिकारी बनता है। इसी प्रकार से अग्रणी कथाकार अपनी रचनाओं की गुणवत्ता के आधार पर अग्रणी साहित्यकार बनता है।

अब परिवेश की भूमिका को ज्ञानरंजन के कथाकार की निर्मिति में देखा-परखा जाना आवश्यक है। परिवेश का किसी के निर्माण में बहुत बड़ा योगदान होता है। यदि अनुकूल परिवेश हो तो व्यक्ति के चरित्र के निर्माण में वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र का उदाहरण इस दृष्टिकोण से अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने साहित्यिक परिवेश में ही अपनी आंखें खोली थीं। अतः तदनुरूप उनका विकास हुआ। उन्हीं की तरह ज्ञानरंजन के रक्त में भी साहित्य था। उनके पिता स्वर्गीय रामनाथ सुमन एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार थे। उन्होंने छायावाद के आंदोलन में युवकोचित भूमिका निभाई थी,

वे स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी भी थे तथा उन्होंने 'त्यागभूमि', 'नवराजस्थान', 'सम्मेलन पत्रिका' और 'माया' जैसी पत्रिकाओं के संपादन का कार्य भी किया। उन्होंने अर्नाल्ड टायनबी, विलड्यूरेंड, टॉलस्टॉय, राधाकृष्णन, दोस्तोएवस्की, बंकिम और शरद् की रचनाओं का अनुवाद कार्य भी किया। उन्होंने उत्तर प्रदेश में गांधी वाङ्मय के कई खण्ड संपादित किए। वे स्वतंत्रता सेनानियों में महत्त्वपूर्ण नेतागण के जीवनीकार के रूप में भी जाने गए। वे प्रायः दस-बारह भाषाओं के ज्ञाता थे। सुमनजी ने प्रसाद साहित्य की महत्त्वपूर्ण आलोचना प्रस्तुत की थी। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि ज्ञानरंजन को जन्म से ही साहित्यिक परंपरा-वैभव प्राप्त था। इसी प्रकार उनकी भाषिक क्षमता भी उनके द्वारा अनायास प्राप्त किए गए कई भाषा-संस्कृति रूपों से बढ़ती रही, फलती-फूलती रही।

इलाहाबाद के उनके घर में डॉ.राम कुमार वर्मा, भुवनेश्वर, भारती, मार्कण्डेय, जगदीश गुप्त और महमूद हुनर जैसे महान् लोग आया करते थे। इन विराट साहित्यिक विभूतियों के सामीप्य का लाभ भी ज्ञानरंजन के लेखकीय व्यक्तित्व को मिला।

सुमनजी के घर में एक समृद्ध पुस्तकालय था। ज्ञानरंजन को वह बहुत ही आकर्षित करता था। वे अल्पायु में ही लेखकों को जानने लगे थे। पंद्रह-सोलह वर्ष की अवस्था तक उन्होंने वे सारी महत्त्वपूर्ण किताबें पढ़ ली थीं, जो उनके पिता के पुस्तकालय में विद्यमान थीं। वे स्वयं लिखते हैं–"लेकिन किशोरावस्था में इलाहाबाद की धूं-धूं करती गर्मियों के खौफ़नाक दिन सबसे यादगार हैं, जब सूनी दोपहरों में सुमनजी के पुस्तकालय की किताबों को उलटने लगा था और फाइलों में रखे निजी और साहित्यिक पत्रों की गोपनीयता भंग करने लगा था।

उन दिनों दोपहरें अपने हक़ में हुआ करती थीं। जो चाहे करो।"[28] अन्यत्र वे कहते हैं– "मेरे घर में पुस्तकों का विशाल संग्रह था। राजनीति, इतिहास और साहित्य के साथ 'विशाल भारत', 'माधुरी', 'हंस' के दिनों की तमाम पत्रिकाओं की सजिल्द फाइलें थीं। उनकी तरफ़ एक उम्र तक नज़र डालने का भी मन नहीं करता था। घनघोर बरसातों में जब दिन-दिन तक निकलना नहीं होता था और वृक्षों पर फल गायब हो जाते थे, पशु भीगते हुए बिना हिले-डुले स्थिर हो जाते थे तब रामशलाका पद्धति से मैं एक किताब निकालता शेल्फ से और उन्हें उलटता-पुलटता था, यह एक बेमन कार्रवाई थी।"[29]

ज्ञानरंजन पर किन्हीं अर्थों में उनके पिता के व्यक्तित्व का प्रभाव रहा है। वे इसी संदर्भ में अपने श्रद्धेय पिता के बारे में लिखते हैं–"रचनाओं के रूप में मुझे उनकी (सुमनजी की) सबसे पहले जो दो किताबें देखने को मिलीं, उनमें 'विपंची' नाम का एक कविता संग्रह था और दूसरा 'शेरशाह' की जीवनी थी। इसी समय उनकी अंग्रेजी किताब 'ब्लीडिंग ऊँड' की अनेक प्रतियाँ और 'जब अंग्रेज आए' की प्रतियाँ भी मिलीं, जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने बैन कर दिया था।"[30]

उनके परिवेश के उनके लेखक पर प्रभाव को विस्तार से जानने के लिए दिनांक 16.08.1996 को धनपाड़ा, हरदा में श्री शशांकजी को उनके द्वारा दिए गए साक्षात्कार का बड़ा ही महत्त्व है। वहाँ वे शशांकजी के किसी प्रश्न के उत्तर में कहते हैं–"साहित्य-संस्कार या साहित्यिक रुचि या साहित्यिक रचना के प्रति आग्रह या पढ़ने-लिखने के प्रति मेरी प्रवृत्ति बहुत बाद में प्रारंभ हुई। लेकिन शुरू में मैं अपने परिवार का सबसे प्रिय और सबसे आवारा व्यक्ति था।.....मेरे पिता तो बिलकुल ही भिन्न किस्म के व्यक्ति थे। बहुत अनुशासित व्यक्ति थे,

बहुत 'मेथॉडिकल' किस्म के व्यक्ति थे । वे अपना हर काम बहुत सुविचारित तरीके से करते थे, एक लक्ष्य के साथ करते थे ।"[31] इसके ठीक विपरीत स्वभाव था उनके पुत्र ज्ञानरंजन का । वे बैठकबाजी बहुत पसंद करते थे । वे समय के उतने पाबंद भी नहीं थे, जितने उनके पिता थे । वे स्वयं इस संदर्भ में कहते हैं–"लेकिन इसके बाद भी क्यों एक आवारा किस्म का , घुमक्कड़ किस्म का न पढ़ने लिखने वाला व्यक्ति, मित्र-समाज के बीच रहने वाला आदमी, 24 घण्टे घूमने-फिरने वाला एक 'वेस्टर' के रूप में, एक फालतू समय गंवाने वाले व्यक्ति के रूप में लम्बे-लम्बे समय तक काफी हाऊस में बैठने, लम्बे-लम्बे समय तक मित्रों के साथ सडकों पर घूमते रहने की आदत में मैं था ।"[32] ज्ञानरंजन पर उनके शहर इलाहाबाद का बड़ा गहरा प्रभाव था । वे इस शहर के कोने-कोने, कण-कण की ज़िन्दगी को जीने वाले लेखक हैं । वे कहते हैं– "तो मैं समझता हूँ कि भले मैंने बहुत सारी कहानियाँ इलाहाबाद में रहकर लिखी हों लेकिन इलाहाबाद की पृष्ठभूमि पर ये प्रारंभिक वातावरण है उसका, जिसने कि मेरे ऊपर असर डाला और शायद मुझको भीतर से प्रेरित किया ।"[33] उनके जीवन में कई महत्त्वपूर्ण लोग आए जिनका उन पर, उनके कलाकार पर गहरा प्रभाव पड़ा था । ज्ञानरंजन इन लोगों के बारे में बतलाते हैं–"इसके बाद एक दूसरा दौर इलाहाबाद के जीवन का आया, वो ये कि हमने साहित्यकारों के साथ संबंध बनाए, लिखने-पढ़ने वाले व्यक्तियों के साथ हमारा मिलन हुआ और उस मिलने में बहुविध प्रकार के लोग थे । हमारे प्रोफेसर्स थे, हमारे अध्यापक थे जो उस समय हिंदी के बड़े लेखकों में से थे–डॉ. राम कुमार वर्मा, और धीरेन्द्र वर्मा, धर्मवीर भारती और रघुवंश और फिराक साहब जिन्होंने मुझे अंग्रेजी पढ़ाई, वाई.सहाय, उनके छोटे भाई ने भी मुझे अंग्रेजी पढ़ाई । इस प्रकार के विभिन्न लोगों का एक माहौल था जो इलाहाबाद में मुझको मिला । तब मैं लिखता नहीं था लेकिन लिखने के प्रति, साहित्य के प्रति एक जिज्ञासा थी, चूंकि घर में ही

जैसा कि आपसे कहा कि बहुत ही, एक अद्‌भुत और एक विशाल 'लाइब्रेरी' थी और उस 'लाइब्रेरी' से भी किताबें निकालकर कभी-कभी देखता था ।"[34] ज्ञानरंजन ने लिखना बहुत बाद में प्रारंभ किया । उन्हें अपने समय में जिस तरह के साहित्य की अपेक्षा थी, वैसा साहित्य वे अपने समय में प्राप्त नहीं कर पाए थे । अतः उन्होंने ही स्वयं को इस क्षेत्र में उतारा था । वे 'परिमल' नामक संस्था के कलावादी स्वरूप से बहुत चिढ़ते थे । इन सच्चाइयों ने उन्हें लिखने को बाध्य किया था । वे कहते हैं- "लेकिन लिखने का काम मेरा बहुत बाद बहुत विलम्ब से शुरु हुआ । .....शायद सबसे ज्यादा लिखने के मामले में मुझे किसी बात ने प्रेरणा दी तो वो इस बात ने कि इलाहाबाद में जो एक 'परिमल' नामक संस्था थी, उसमें जिस प्रकार के विचार के लोग थे उन्होंने । उनसे बिना किसी तर्क के मुझे ऐसा लगा कि इनका जो साहित्य है, वो मुझको बहुत प्रेरित नहीं कर सकता । ये वही समय है जब शायद किसी विचार ने मेरे भीतर जन्म लेना शुरू किया होगा ।"[35]

जैसा कि एतद् पूर्व उल्लिखित किया जा चुका है कि विश्वविद्यालय में प्रवेश के बाद ही ज्ञानरंजन का कथाकार-कलाकार जीवित हो पाया और उसने अपने अस्तित्व की उपस्थिति दर्ज करवाई । इन सच्चाइयों ने 'अरुण शलभ' नामक साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था को जन्म दिया । 'अरुण शलभ' के सदस्यों में अधिकतर विश्वविद्यालय के थे । इन्हें हिन्दी साहित्य से गहरा लगाव था । सुमनजी के संरक्षण में यहाँ साहित्यिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियाँ चल रही थीं । यहीं ज्ञानरंजन के भीतर के साहित्यकार ने अपने स्वरूप को प्राप्त करने के उद्योग का समारंभ किया । ज्ञानरंजन ने प्रारंभ में कविताएँ लिखीं । ये कविताएँ 'ज्ञानोदय', 'धर्मयुग' इत्यादि पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुईं । ये कविताएँ छंदबद्ध थीं और विषय के धरातल पर रोमांटिक थीं । इस प्रकार युवा ज्ञानरंजन ने

साहित्य-संसार में कविता के दरवाज़े से प्रवेश किया । 'अरुण शलभ'को जब 'दैनिक भारत' का समर्थन मिला तब यह विशेष रूप से साहित्यिकों की नज़र में चढ़ पाया । इस संस्था में कई पदाधिकारी थे पर पद पर न रहते हुए भी प्राय: समस्त क्रिया-व्यापार में ज्ञानरंजन ही विद्यमान रहते थे । "दरअसल ज्ञान अपने भीतर के लेखक को यहीं से बाहर लाना चाहता था और यह भी चाहता था कि और लोग भी इसमें बने रहें ।"[36] विश्वविद्यालय में ज्ञानरंजन को कितने ही ऐसे सहपाठी मिले जो तब हिन्दी साहित्य में अपना स्थान बनाने की कोशिश कर रहे थे, जिनमें जयकुमार जलज, दूधनाथ सिंह, हरिशंकर शुक्ल इत्यादि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं । इनमें से कोई भी 'अरुण शलभ' का सदस्य नहीं था और न कभी ज्ञानरंजन के द्वारा इन लोगों को 'अरुण शलभ' का सदस्य बनाये जाने का प्रयास ही हुआ । संभवत: इन लोगों ने ज्ञानरंजन को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया था या यदि उन्हें 'नोटिस' किया भी तो सुमनजी के पुत्र के रूप में, किसी व्यक्तिगत प्रतिभा के स्वामी के रूप में नहीं । यह परोक्ष रूप से उनके प्रति व्यक्त उपेक्षा ही थी, जिसे ज्ञानरंजन के कलाकार को सहने में कष्ट का अनुभव हुआ । उनकी प्रतिभा ने इस चोट से बहिर्गमन के लिए पथ की खोज की । इसी क्रम में उन्होंने अपनी प्रतिभा को निखारने के लिए 'अरुण शलभ' का दामन थामा ।

इसी समय से ज्ञानरंजन पत्रिकाओं में अपनी कविताओं के माध्यम से छपने लगे एवं अपने पिता से इतर उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का स्वतंत्र आविर्भाव हुआ । ज्ञानरंजन ने अपने साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में रचनाओं के प्रकाशन हेतु कभी अपने पिता से अवांछित-अवैध सहायता नहीं प्राप्त की । 'अरुण शलभ' के संरक्षण में ज्ञानरंजन के साहित्यिक ही नहीं, अभिनेता संस्करण का भी विकास हुआ । यहाँ उन्होंने कई प्रकार ने नाटकों में अभिनय भी किया एवं कई भूमिकाएँ भी अदा कीं । इस प्रकार 'अरुण शलभ' ने साहित्यकार

ज्ञानरंजन के स्वरूप को तो गढ़ा ही, उसने अनायास ही संपादक और अभिनेता ज्ञानरंजन को भी निर्मित करने में अपनी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। इसी क्रम में ज्ञानरंजन ज़मीन से जुड़े और उन्होंने साहित्यिक अभिरुचि को विकसित कर हिन्दी साहित्य को नई दशा एवं गति प्रदान करने का प्रयास किया। इस कार्य में उनके संपादक की बहुत बड़ी भूमिका रही है।

1.2.2 लेखक का 'तहख़ाना'

किसी भी रचनाकार के भीतर एक तहख़ाना छिपा होता है, जहां उसके सर्जन के रहस्य तथा उसकी कला के कारण यत्र-तत्र तरतीब या बेतरतीब ढंग से रखे होते हैं। यह तहख़ाना उसके स्रष्टा होने के मूल में होता है। कहीं-कहीं इसे आलोचकीय दृष्टि रचना-प्रक्रिया के रूप में भी स्वीकार करती है। ज्ञानरंजन के लेखक का भी एक तहख़ाना है, जो स्वयं में कई सृजन-तत्त्वों का कारण है।

ज्ञानरंजन का समय वह समय है, जब भारतीय समाज के लोगों को स्वदेश में रहते हुए विदेश का अजनबीपन महसूस हुआ। लोगों के सामने 'कांग्रेस पार्टी' और 'गांधीवाद' की पोल खुल गई थी, उनका सम्मोहन टूटने लगा था। ज्ञानरंजन के अनुसार- "इसके बाद समय बदल गया। इतना बदल गया कि गांधीजी भंगी बस्ती से घनश्यामदास बिड़ला आवास में पहुँच गए और हम भी यहां (इलाहाबाद) आ गए।"[37] अंग्रेजों के जाने के बाद दलितों की राजनीति करने वाले कई लोग दलितों से दूर सुख-वैभव के जीवन में प्रवेश कर गए। शोषित व्यक्ति की स्थिति में स्वातंत्र्योत्तर भारत में भी कोई अंतर न आया। इसी तथ्य को उद्घाटित करते हुए ज्ञानरंजन लिखते हैं–"अंग्रेज क्या चले गए कि भंगी बस्ती भी धीरे-धीरे उजाड़ हो गयी। उसके दो महानुभाव गुलमोहर पार्क और मॉडल बस्ती के महलनुमा घरों में काबिज हो गए। बाकी बचे में से

205823

23 MAY 2008

कुछ की चप्पलें टूट गयीं और अब वे बूढ़े रोटी-गुड़ खा रहे हैं और अतीत को कोस रहे हैं। मैं क्या कहूं उनकी दरिद्रता को-वह गुड़, प्याज और दाल किसी से भी व्यक्त नहीं हो सकती। हां फटे दूध जैसी साड़ी पहने उनकी बीवियाँ सफदरगंज अस्पताल में नर्स-बाई का काम कर रही हैं।"[38] ज्ञानरंजन की दृष्टि यहां बिलकुल साफ़ दिखती है। यह उचित ही हुआ था कि उनके पिता सही समय पर इलाहाबाद आ गए एवं यहां उन्होंने जड़ें जमा लीं अन्यथां ज्ञानरंजन को स्वदेश में परवर्तीकाल में पराधीन जीवन बिताना पड़ता। वे इसी संदर्भ में कहते हैं– "हम तो बच गए कि पहले ही पिताजी यहां आ गए। इसको हम लाखों पाए कहते हैं। इसलिए कि हम चुस्त चालाक गांधी शांति प्रतिष्ठान की नक्काली के बराबर पहुँच नहीं सकते थे। इस नए खूनी दरवाज़े पर पता नहीं कितने सच्चे टकरा-टकराकर ख़त्म हो गए। यह तो मैं दूर का नजारा बता रहा हूँ। अगर इस चर्खी में हम फंस गए होते तो अहिंसक लहू लिथड़ता रहता।"[39] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में राजनीति, प्रशासन और सामाजिक व्यवस्था में मूल्यों के धरातल पर बड़ा भारी स्खलन हुआ था। ज्ञानरंजन इसी संदर्भ में आगे कहते हैं–"जब गांधीजी बिरला भवन में पहुँचे तो भंगी बस्ती का राजघाट पहुँच जाना क्या ग़लत था। भंगी बस्ती में हाथ के क़ागज की लुगदी महकती थी। नीम की चटनी के लिए नीम के पेड़ नंगे हो गए थे। दातौन करते हुए अख़बार पढ़ते थे। सुबह प्रार्थना के बाद चरखा यज्ञ होता था। यहां फूलों, उपन्यासों, मुहब्बत और लौह-यंत्रों की गुंजायश न थी।.....अब न तो पानेवाले कार्यकर्त्ता हैं जो खादी का कफ़न ओढ़े हैं।"[40]

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में पूंजीवादी शक्तियां षड़यंत्र में व्यस्त हो गयीं। उन्होंने शक्ति के प्रत्येक रूप को खरीद लिया। ज्ञानरंजन और उन जैसे अन्य शोषण-चक्र के कारणों को जानने वालों के भीतर

'कांग्रेस पार्टी' और 'गांधीवाद' के दुरुपयोग से जुड़े लोगों के प्रति असंतोष व्याप्त हो गया था। ज्ञानरंजन इन्हीं क्रूर सच्चाइयों को देखते-सुनते हुए बड़े हुए थे; अतः उनमें इन चीज़ों के प्रति क्षोभ, जो प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुआ था, का विकसित होना सामान्य-सी बात थी। इन्हीं कारणों से वे समाजवादी विचारधारा की ओर प्रवृत्त हुए और अपने पिता के गांधीवादी आदर्शों से उनका वैचारिक मतभेद हुआ था। यह मतभेद पिता-पुत्र में समय बीतने पर बढ़ता ही गया। ज्ञानरंजन के अनुसार–"मेरा गांधीवादियों के प्रसंग में उनसे (सुमन जी से) जबर्दस्त झगड़ा होता था, जो (गांधीवादी) अब तक इस लूट में शामिल हो गए थे। वे अंत तक बहस करते थे पर पटाक्षेप के बाद अवसादग्रस्त और चुप हो जाते थे।"[41] इसके अलावा ज्ञानरंजन का अपना एक मित्र समाज था। इसमें 'परिमल' के लोगों के लिए कोई जगह नहीं थी क्योंकि 'परिमल' व्यक्तिवाद, रूपवाद का पोषक था। ज्ञानरंजन के मित्र-समाज में जिन लोगों की गिनती तब होती थी, वे प्रायः गैर-साहित्यिक थे। 'परिमल' का स्वतंत्रता-संग्राम से कोई सीधा संबंध न था, न ही वह स्वातंत्र्योत्तर जीवन-संघर्ष का गवाह था। ज्ञानरंजन को जिस प्रकार के साहित्य की आवश्यकता थी, वह उन्हें सुलभ नहीं हो पा रहा था। यही साहित्य जिसका तब अभाव था, ज्ञानरंजन की लेखनी से एक नए स्वरूप को प्राप्त कर निःसृत हुआ था।

ज्ञानरंजन के अनुसार उन पर हरिशंकर परसाई और गजानन माधव 'मुक्तिबोध' का बड़ा गहरा प्रभाव था। वे इन प्रगतिशील साहित्यकारों को बहुत ही पसंद करते थे। वे कहते हैं– "मुझको ऐसा लगता है कि हरिशंकर परसाई और 'मुक्तिबोध' इन दो व्यक्तियों ने शायद मेरे जीवन को बदलने में, मेरे जीवन के बारे में मुझको एकबार फिर से सोचने में बहुत बड़ी भूमिका अदा की है।"[42] एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं– "इलाहाबाद में ही पहली बार और केवल

एकबार 'मुक्तिबोध' को देखा था, सुना था अधिक-से-अधिक दस-पंद्रह मिनट । वह एक रोमांचकारी झलक थी । .....'आकाशवाणी' का वह एक असाधारण खुला मंच था और काव्य पाठ में हिन्दी नई कविता के अनेक दिग्गज वहां मौजूद थे । .....मैंने तब तक 'मुक्तिबोध' का नाम ही सुना था । उन्होंने (उस दिन) अपनी 'औरांगउटांग' कविता पढ़ी । .....लेकिन 'औरांगउटांग' कविता सुनकर हम सन्न रह गए । .....हम उसे आधा-अधूरा समझ रहे थे, लेकिन इतना लगता था कि यह हमारी कविता है, हमारे भविष्य की कविता है । .....हमारे लिए इसके बाद चिरागों में रोशनी न रही जैसी हालत थी । हम 'मुक्तिबोध' को किसी 'मैटनी आयडियल' की तरह देख रहे थे । वहां एक फिल्मी सितारे को पा लेने जैसी उत्तेजना थी । उसके दो-चार साल बाद 'मुक्तिबोध' को जबलपुर में, मैंने परसाईजी के साथ भरपूर देखा और पाया ।"[43]

ज्ञानरंजन 'मुक्तिबोध' की वस्तुवादी दृष्टि के प्रशंसक थे । इसीलिए वे अपनी रचना-प्रक्रिया के संदर्भ में जीवन को महत्त्व देते हैं और इसी संदर्भ कहते हैं–"लेकिन जीवन की पाठशालाएँ अपना काम करती रहीं ।"[44]

ज्ञानरंजन विश्वविद्यालय पहुँचने पर 'लिखने-पढ़ने' लगे थे । वे लिखते हैं–"उन्हीं दिनों कविताएं लिखीं । कविता सभी लिखते थे । जिसको देखो वही कविता लिखता था । पुरुष-कवि देश और स्त्रियों को अपनी कविता संबोधित करते थे और महिला कवयित्रियाँ देश और पुरुषों को अपनी कविताएं समर्पित किया करती थीं । .....लेकिन इतना जरूर हुआ चीज़ें बहुतायत दृष्टिगोचर होने लगीं ।"[45] उन दिनों राजनीति और प्रेम दोनों का पारस्परिक अन्योन्याश्रित संबंध प्राय: दिख जाता था । ज्ञानरंजन इसी सत्य को इस संदर्भ में रेखांकित करते हुए कहते हैं–"और जैसा कि उन दिनों यह सबसे आकर्षक रिवाज था,

प्रेम और सियासत दोनों का समन्वय बनने लगा । समन्वय पूरी तरह नहीं हुआ क्योंकि एक तरफ़ प्रेम था तो दूसरी तरफ़ झुंझलाहट भी थी । झुंझलाहट कभी खलिश कभी विष भी बनी । इसने प्रेम को ढका भी । यही वह समय था जबकि मोटे तौर पर मैं लिख सकता हूँ कि जीवन और साहित्य का सतही संगम हो रहा था । लेकिन अंदर इतना जबर्दस्त उपद्रव होता था कि रचना अक्सर टूट जाती थी ।"[46]

ज्ञानरंजन के अनुसार द्वंद्व ही हर रचना का कारण है । वे जीवन को द्वंद्व का पर्याय मानते हैं । "कुल मिलाकर मैं यह लिखना चाहता हूँ कि वस्तुतः मुठभेड़ ही हर रचना हर अन्वेषण और हर लहलहाते जीवन का मूल है ।"[47] वे रचना को निजता और रचना-प्रक्रिया को वर्ज्य-तत्त्व को छाननेवाली सत्ता के रूप में स्वीकृति देते हैं । वे लिखते हैं–"दरअसल हमें अपनी कहानी लिखते समय निजता और सामाजिकता के बीच एक चक्की चलानी पड़ती है । और बीच-बीच में कूड़े को फेंकना पड़ता है । इसलिए मेरे लिए कहानी की रचना-प्रक्रिया वही काम करती है जैसा मानव-शरीर में गुर्दे करते हैं ।"[48]

1.2.3 ज्ञानरंजन का साहित्य एवं लेखकीय विकास : तथ्यों के आईने में :

"ज्ञान मध्यप्रदेश की प्रतिभाओं की नर्सरी है ।"[49] काशीनाथ सिंह ने ज्ञानरंजन के संदर्भ में यह अक्षरशः उचित टिप्पणी की है । ज्ञानरंजन 'पहल' में छपने वाले लोगों के संगठन बैनर आदि नहीं देखते हैं । वे ईमानदारी से सही अर्थों में साहित्य ही 'पहल' में छापते हैं । यहां वे दृढ़-निश्चयी और निष्पक्षधरता के प्रति निष्ठावान दिखते हैं । अपने इस काम में वे मित्र-शत्रु का भेद नहीं करते हैं । इस प्रकार से वे निष्ठा के साथ साहित्य की सेवा करते हुए एक संपादक के

सच्चे कर्त्तव्य का सही अर्थों में पालन करते हुए दिखते हैं । वे अपनी प्रारंभिक कहानियों के बारे में परिचय देते हुए लिखते हैं–"मेरी प्रारंभिक कहानियों में पालघाट या दार्जिलिंग या सुदूर राज्यों के इलाके पृष्ठभूमि के रूप में आते हैं । पंचमढ़ी भी आती है । कलकत्ता भी आता है । उस समय ये मेरी कल्पना की ज़गहें थीं ।"[50] उनका यह आत्मसाक्ष्य सत्य है क्योंकि उनकी प्रारंभिक स्तर की कहानियों यथा 'मनहूस बंगला' या 'दिवास्वप्नी' या 'दिलचस्पी' में ऐसे ही परिवेश हैं ।

'दिवास्वप्नी' ज्ञानरंजन की पहली प्रकाशित कहानी है । उनकी पहली लिखी कहानी 'मनहूस बंगला' है । ज्ञानरंजन की पहली कहानी 'मनहूस बंगला' 'ज्ञानोदय' में प्रकाशित हुई थी । उनकी प्रारंभिक कहानियों में से एक 'दिवास्वप्नी' 'नयी कहानी' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी । उनकी सबसे अंतिम कहानी 'अनुभव' है, जो 'वाम' पत्रिका में छपी थी ।

ज्ञानरंजन के कुल छः कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं । ज्ञानरंजन के कहानी-संग्रहों में, 'फेंस के इधर और उधर'(सन् 1968), 'यात्रा' (सन् 1971), 'सपना नहीं' (सन् 1977), 'मेरी प्रिय कहानियाँ (सन् 1979), एवं 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ (सन् 1979) महत्त्वपूर्ण हैं ।

इसके अलावा सन् 1997 में उनके द्वारा विविध विषयों पर लिखे गए लेख, संस्मरण, व्याख्यान, साक्षात्कार, संपादकीय तथा अख़बारी टिप्पणियों का संकलन निकला, जिसे 'कबाड़ख़ाना' के नाम से जाना जाता है ।

इसके अलावा वे 'पहल' के निष्ठावान एवं निष्पक्ष संपादक की हैसियत से

भी जाने जाते हैं । डॉ.रामविलास शर्मा ने उचित ही कहा है–"ज्ञानरंजन अपने काम और लगन के पक्के हैं । एक बार वामपक्षी विचारधारा से जुड़े तो फिर उसे छोड़ा नहीं । इतने लम्बे समय से पत्रिका निकाल रहे हैं । हालांकि उनके पास ज़्यादा तामझाम नहीं है, फिर भी जबलपुर जैसी जगह से वे 'पहल' जैसी पत्रिका निकाल रहे हैं, यह बहुत महत्त्वपूर्ण है ।"[51]

'पहल' लगभग पिछले 33 वर्षों से निकल रही है । इसका प्रकाशन किंचित सन् 1973 से प्रारंभ हुआ था । इसे आपातकाल के दौरान कई षड़यंत्रों का सामना भी करना पड़ा था । यह ज्ञानरंजन का दृढ़ संकल्प ही था, जिसने इस पत्रिका को सुदीर्घ जीवन प्रदान किया तथा स्वनिर्भर भी बनाया । आज यह हिंदी पत्रिकाओं की अग्रणी क़तार में खड़ी है । 'पहल' की उम्र के बराबर हिन्दी में कम ही पत्रिकाएँ जीवित रह सकीं । ".....ज्ञान के साथ 'पहल' का बीस साल का सफर उनके युवा उम्र का असाधारण दौर, एक गहरे अध्यवसाय से भरे साहित्यिक, सांस्कृतिक उत्खनन की प्रक्रिया जरूर है । उनके शब्दों में 'पहल' इस महादेश के वैज्ञानिक विकास के लिए प्रस्तुत प्रगतिशील रचनाओं की अनिवार्य पुस्तक है । पर देखा जाए तो 'पहल' एक पुस्तक (पत्रिका) भर नहीं है, बल्कि वह सशक्त प्रगतिशील सांस्कृतिक आंदोलन का सतत विकासमान पर्याय है; जिसके पीछे ज्ञानरंजन जैसे यशस्वी संपादक का सूत्रधार बराबर चौकन्ना है ।"[52]

1.3 कुछ अन्य आवश्यक तथ्य :

ज्ञानरंजन ने शुरुआती दौर में कविताएँ भी लिखी हैं । इन्होंने कई कहानियों का अनुवाद भी किया है । इनकी कहानियाँ भारतीय भाषाओं के अलावा अनेक विदेशी भाषाओं में भी अनूदित हुई हैं । विशेष रूप से उन्हें अंग्रेजी,

जर्मनी, जापानी, रूसी एवं पोल भाषाओं में अनूदित किया गया है। भारत के अनेक विश्वविद्यालयों के अलावा इनकी कहानियों का पठन-पाठन ओसाका, लंदन, सेनफ्रांसिस्को, लेलिनग्राद, हाइडेलबर्ग एवं पूर्वी यूरोप के अनेक अध्ययन केन्द्रों में होता है। इनकी कहानियाँ पेंग्विन, लंदन की भारतीय साहित्य की एन्थालॉजी में चयनित हुई हैं। इनकी कहानियाँ केन्द्रीय विद्यालयों में भी पढ़ाई जाती रही हैं, इनका पठन-पाठन साहित्य वर्ग में यहां होता रहा है।

ज्ञानरंजन ने दो बार विश्व-यात्रा की है। ये यायावरी संगीत और कविता पढ़ने में विशेष रुचि रखते हैं। इनका लिखने में गद्य के प्रति विशेष झुकाव है। इन्होंने भारत के सभी स्थानों का कई बार संपूर्ण देशाटन-भ्रमण किया है। इनकी कहानी 'फेंस के इधर और उधर' पर दूरदर्शन द्वारा फिल्म-निर्माण भी हुआ है।

ज्ञानरंजन को कई महत्त्वपूर्ण सम्मान उनके साहित्य-कर्म के लिए मिले हैं। इन्हें 'सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड' उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का 'साहित्य भूषण सम्मान', 'अनित्य कुमार और सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार' और मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति का 'शिखर सम्मान' इत्यादि पुरस्कारों एवं सम्मानों से सम्मानित किया गया है। इसके अलावा इन्हें सुदीर्घ कथा-साधना, सृजनशीलता और बहुआयामी कार्यनिष्ठा के लिए वर्ष 2001-2002 के राष्ट्रीय 'मैथिलीशरण गुप्त सम्मान' से भी सम्मानित किया गया है। हालांकि ज्ञानरंजन को उनके पाठकों-प्रशंसकों से जो अकूत प्रेम-श्रद्धा मिली है, वही उनके लिए सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार है।

1.4 लेखक के वैचारिक धरातल :

किसी भी रचनाकार के कृति-सर्जन के मूल में उसके वैचारिक आधार होते हैं।"विचारधारा मनुष्य की रीढ़ होती है। जैसे एक वृक्ष बिन बारिश तपते

हुए दिनों में भी अपनी पाताल तक जाती जड़ों से जीवन जल और पोषक तत्त्व लेता रहता है, उसी प्रकार विचारधारा ऊपर से किसी लेबल या ठप्पे की तरह नहीं आती, वह भीतर से मर्म की तरह रचना तत्त्व के साथ रिसती है । इसके अभाव में लोग सतही, तात्कालिक, बाज़ारू या आत्मसुखी मरणान्तक लेखन करते रहते हैं ।"[53] यह सत्य है कि विचारधारा मनुष्य की रीढ़ होती है, इसलिए रचना की मूल दीर्घजीवी शक्ति भी इसमें निहित होती है । यही तत्त्व रचनाओं को कालजयी बनाता है । विचारधारा समयानुसार परिवर्तित या शिथिल भी होती रहती है । ज्ञानरंजन विचारों से मार्क्सवादी हैं और प्रगतिशील जीवनदृष्टि के बहुत बड़े समर्थक हैं । वे मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– "यह (मार्क्सवादी विचारधारा) मानव सहमति से आगे बढ़ती है । यह स्थिर नहीं है । इसका कोई विकल्प आज तक नहीं सुझाया गया है । उससे बचाव और मानव-विनाश के तमाम रास्ते आते रहते हैं पर यह अपनी जगह अटूट है । वह अतार्किक किसी दौर में नहीं रही और आज उसकी सबसे ज़्यादा जरूरत है ।"[54]

युवा ज्ञानरंजन विश्वविद्यालय में प्रवेश के पश्चात् ही इस प्रगतिशील विचारधारा के संपर्क में आए । वे गांधीवाद की तद्युगीन प्रयोजनहीनता एवं उसका दुरुपयोग देख चुके थे । इस धरातल पर उन्हें उनके पिता के गांधीवादी विचारों से भी संघर्ष करना पड़ा । वे उन दिनों छात्र-राजनीति से जुड़े और बहुत ही सक्रिय रहे । "वह ऐसा समय था कि एक रचनाकार का बीज अपनी ललक और प्रतिभा के अलावा तीन बाहरी चीज़ों से प्रस्फुटित होता था । सोहबत, शहर और मोहब्बत । तब ठस यथार्थ और आकाशचारिता की दबिश नहीं थी ।"[55] इन तत्त्वों ने उन्हें यथार्थवादी बना दिया । वे परवर्तीकाल में अपनी रचनाओं में इस रंग को इसी कारण भर सकने में सफल हो सके, क्योंकि इसकी भूमिका उनके

विद्यार्थी जीवन में ही बन गयी थी । वे अपने इस आग्रह के समर्थन में लिखते हैं–"आप अगर यथार्थ में शरीक नहीं होते, उससे प्रभावित नहीं होते या उसे प्रभावित नहीं करते तो यथार्थ आपको ध्वस्त कर देगा (यह बात जीवन की ही तरह कविता के बारे में भी सत्य है ।) सातवें दशक के उत्तरार्ध में भयावह सामाजिक परिस्थितियों, राजसत्ता की असफलताओं और क्रूरताओं के प्रतिरोध में उभरी लड़ाइयों ने जब देश की चेतना को गुणात्मक स्तर पर बदलना शुरू किया तो एक और तरह की कविता की जरूरत पैदा हुई ।"[56]

वास्तविकता यह है कि यह उस समय महसूस किया जाने लगा था कि समकालीन चुनौतियों का मुकाबला यथार्थपरक दृष्टि के द्वारा ही संभव है और इस संदर्भ में मार्क्सवादी चिंतन की स्पृहणीयता सर्वविदित थी; अत: ज्ञानरंजन इस दिशा में प्रवृत्त हुए । वे कलावादियों के अमानवीय तथा असामाजिक-इतिहास-विरोधी दल को ललकारते हुए कहते हैं–"एक प्रश्न का उत्तर हम चाहते हैं । आज़ाद देश के इतिहास में अपने विचारों के लिए आज तक कितने कलावादी गिरफ्तार हुए और कितने वामपंथी ? विचारों की मुक्ति तथा विचारों के जनतंत्र में केवल कुत्ते स्नान कर रहे हैं । लहू के जलाशय में नहानेवाले ही वास्तविक मोक्ष के अधिकारी हैं । वे कला तथा जीवन की विरासत के शीर्षक हैं ।"[57] इसी क्रम में 'भारत-भवन' की अमानवीय चेतना, उसकी सामाजिक विचार-शून्यता पर व्यंग्य करते हुए वे तथाकथित संस्कृति रक्षकों के मुखिया से पूछते हैं–" श्रीयुत संस्कृति मैनेजर यह बतलाइये कि मार्क्सवादी विचारधारा हिंस्र है कि विचारधारा के विरोधी विचारहीन लोग । जुलूस ज़्यादा हिंसक होता है कि वह वातानुकूलित कमरा जिसमें पुरातत्त्व भरा हो और हुसैन के चित्र । जिसमें रज़ा के लाल-पीले चूनर जैसे चित्र लटके हों ।"[58] कलावादियों को ज्ञानरंजन अमानवीय भाव-बोध से जुड़ा मानते हैं और इसी संदर्भ में सामान्य आदमी के

हक़ में उछलते हुए नारे को अपना समर्थन देते हैं । वे आगे लिखते हैं–"हुसैन और रज़ा आधुनिक चित्रकला के जनविरोधी सबसे हिंसक चितेरे हैं । इस देश में बहुसंख्यक दलित जनता हिंसक है या कि अल्पसंख्यक राजा । भूरी फाइल और धूसर लोहे की नली ज़्यादा हिंसक है या कि एक सीधा उछलता नारा । कविता की क़िताब ज़्यादा हिंसक है या गृह-मंत्रालय ।"[59] वे शोषणकारियों के सुरक्षा-कवच के रूप में इन कलावादियों की पहचान करते हैं और इसी संदर्भ में 'भारत-भवन' पर करारा व्यंग्य करते हैं । वे लिखते हैं–"भारत-भवन के करिश्मे ज़्यादा हिंसक हैं या भारत-भवन के बाहर रहने का निर्णय करने वाले लोग । आंध्र की पुलिस ज़्यादा हिंसक है या वारावरा राव की भोपाल गैस त्रासदी पर लिखी एक कविता ।"[60]

ज्ञानरंजन की दृष्टि वर्तमान में सूचना साम्राज्यवादी शक्तियों तथा पूंजीवाद की मिलीभगत से निर्मित षड़यंत्रों पर भी है, जहां विचार-शून्यता को बहुत महत्त्व दिया जा रहा है- "देश के सर्वोत्तम दिमाग और रचनात्मक प्रतिभाएँ किसी भी राजनीतिक या सांस्कृतिक समर में घुसने के लिए तैयार नहीं हैं । उनकी विचारधारा चाहे जो कुछ भी हो, उनके पास एक खुश और चमकीली जीवन-पद्धति है और बाज़ार की सभी भव्य चीज़ें देर-सवेर उनमें घर कर गई हैं । इस प्रकार विचार भी एक शानदार जीवन-शैली के बीच पालतू बिल्ली की तरह बैठा है ।"[61] ज्ञानरंजन के अनुसार यह एक बहुत बड़ी समस्या है कि आज इस तरह की सच्चाइयाँ रचनाकार के विरुद्ध उठ खड़ी हुई हैं । "यह उपजती संस्कृति एक रचनाकार के विरुद्ध किस तरह उठ खड़ी हुई है यह भी हमारे यथार्थ का चेहरा है ।"[62] वे बाज़ार की शक्ति तथा उसके द्वारा फैलाये जा रहे विभ्रम को संकेतित करते हुए उससे अपना वैचारिक द्वंद्व रखते हैं । इस क्रम में वे कहते हैं–"इस बाज़ार में तल्लीन और पिपासु होने की जरूरत इतनी हो गई

थी कि मनुष्य की रोशनी भी छीनने की कोशिश हुई । इस उत्पाती बाज़ार ने आत्माओं में प्रवेश कर लिया है और आत्माएँ दुरात्माओं में तब्दील हो गई हैं । यह हमारी प्राथमिकता को हमारे भावी को, हमारी विविध रचनाधर्मिता को और उसकी उज्ज्वलता को गंदला करता है ।"[63] इस प्रकार ज्ञानरंजन वर्तमान समाज, संस्कृति पर अपने कुछ स्पष्ट विचार रखते हैं । वे हमें यहां विचारधारा के स्तर पर समाजवाद के बहुत बड़े समर्थक लगते हैं । बहुत कुछ इन्हीं कारणों से उन्होंने कभी 'परिमल' का भी विरोध किया था ।

किसी रचनाकार की सफलता इसमें निहित होती है कि वह अतीत को वर्तमान में और वर्तमान को भविष्य में ले जाए, निरंतर इस प्रक्रिया में रचना को समृद्ध करते हुए क्योंकि यही किसी युग की आवश्यकता होती है । ऐसा करते हुए वह एक परंपरा का संवहन तथा परिवर्द्धन-संशोधन भी करता है । इसमें उसके विश्वबोध की भी परीक्षा होती है । संप्रति विश्वबोध का स्वरूप विकृत हो रहा है । "मनुष्य के ऊपरी और भीतरी विकास के नाम पर एक नई विश्वदृष्टि अब बन चुकी है । वह कारगर हो रही है । वह हमला कर रही है । वह हिंसक रूपों में हमारे आपके राष्ट्रतंत्र पर हावी है, यह कैसी विश्वदृष्टि है, जो एक महान् विश्वदृष्टि को अपदस्थ करके उसका अस्थायी ही सही पटाक्षेप करके आदमी को दंश देने के लिए, निगलने के लिए लपक रही है ।"[64] ज्ञानरंजन की प्रगतिशील दृष्टि का परिचय उनके स्त्री विषयक विचारों में भी मिलता है । वे यह मानते हैं कि विश्व की आधी जनसंख्या को उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता मिलनी चाहिए तथा लिंग के आधार पर उससे पक्षपात कर, उसे वंचित किया जाना अनुचित है । वे इस संदर्भ में नई परंपराओं-रीतियों की नींव डालने के समर्थन में लिखते हैं-"हमारे समाज में स्त्रियों का रसोईघर से बाहर आ जाना एक बहुत बड़ा युग-परिवर्तन है और यह जारी है ।"[65] यहां उनका इस संदर्भ में

हर्ष भी प्रकट हुआ है । इस प्रकार से ज्ञानरंजन विचारों के धरातल पर स्त्री-मुक्ति के भी समर्थक हैं । उनकी यही पक्षधरता बहुत कुछ वंचितों को समर्थन देने में भी दीख पड़ती है । वे सामाजिक वैषम्य के विपक्ष में खड़े हैं । इस प्रकार हम यह देख सकते हैं कि वे विचारों के धरातल पर मार्क्सवाद से प्रभावित यथार्थपरक प्रगतिशील दृष्टि के स्वामी हैं एवं उनकी प्रतिबद्धता समाज के प्रति है । वे यहां वस्तुवाद के समर्थक प्रतीत होते हैं, जिसके केन्द्र में द्वंद्वात्मक भौतिकवादी चिंतन है । इस प्रकार वे परिवर्तन और क्रांति के संबंधों को भी स्वीकृति देते प्रतीत होते हैं ।

ज्ञानरंजन ने जो अपने जीवन में देखा था, अपने समाज को जिस रूप में जी लेने की चेष्टा की थी और जो उनका भोगा हुआ यथार्थ था वह उनकी रचना में परावर्तित हुआ । उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व का अत्यंत ही घनिष्ठ अन्तर्संबंध है क्योंकि उनके भीतर का व्यक्ति एवं साहित्यकार एक ही सरल रेखा पर खड़े हैं । उनमें ऐक्य है । ज्ञानरंजन के चिंतन और उनके लेखन में एकता है । यह उनकी कलाकृतियों की बहुत बड़ी सफलता है कि उनमें व्यक्ति एवं कहानीकार ज्ञानरंजन के व्यक्तित्व विरोधाभास की स्थिति में न होकर एक दूसरे के सहयोगी के रूप में विद्यमान हैं । यही रहस्य है उनकी कहानियों की ताज़गी, उनकी जीवंतता का । उनके पात्र इसी कारण बहुत विश्वसनीय तथा अपने जान पड़ते हैं क्योंकि उनका यथार्थ किन्हीं अर्थों में व्यक्ति ज्ञानरंजन तथा उनके समाज का भी यथार्थ है । यह तथ्य उनकी कहानियों के प्रभाव को कहीं अधिक प्रभावी बनाता है । इससे उनकी रचनाओं की कलात्मक गरिमा भी बढ़ जाती है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ज्ञानरंजन का व्यक्ति उनके साहित्यकार का पूरक है और दोनों में प्रायः 'मनसा-वाचा-कर्मणा' के धरातल पर एकान्विति देखी जा सकती है । ज्ञानरंजन का साहित्य-कर्म उनके व्यक्ति के जीवन संघर्ष से

उत्तरोत्तर निखरता-संवरता गया है । इस प्रकार उनके कथा-साहित्य के परिप्रेक्ष्य में उनके व्यक्ति का बड़ा ही महत्त्व है क्योंकि उसे जान-पहचान कर ही हम कहानीकार ज्ञानरंजन को तथा उनकी कहानियों को समझ सकते हैं, और यहां से उन्हें समझना कहीं अधिक सरल हो जाता है ।

संदर्भ

1. ज्ञानरंजन, 'कबाड़ख़ाना', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम परिवर्द्धित संस्करण : 2002, पृ.- 10
2. वही, पृ.- 13
3. सं. मिश्र डॉ. सत्यप्रकाश, शर्मा राजेन्द्र (रज्जू), **ज्ञानरंजन एक औसत आदमी के आईने में, कहानीकार ज्ञानरंजन,** नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1978, पृ.- 20
4. ज्ञानरंजन, **कबाड़ख़ाना,** राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम परिवर्द्धित संस्करण : 2002, पृ.- 60
5. वही, पृ.- 18
6. वही, पृ.- 62
7. वही, पृ.- 14
8. वही, पृ.- 14
9. वही, पृ.- 14
10. वही, पृ.- 65
11. वही, पृ.- 14
12. वही, पृ.- 65
13. सं. मिश्र डॉ. सत्यप्रकाश, शर्मा राजेन्द्र (रज्जू), **ज्ञानरंजन एक औसत आदमी के आईने में, कहानीकार ज्ञानरंजन,** नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1978, पृ.- 20
14. वही, पृ.- 20
15. सं. निर्मोही देश, **पल प्रतिपल,** अंक : 45, जुलाई-सितंबर, 1998, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृ.- 7

16. वही, पृ.- 7
17. सं. मिश्र डॉ. सत्यप्रकाश, शर्मा राजेन्द्र (रज्जू), **ज्ञानरंजन एक औसत आदमी के आईने में, कहानीकार ज्ञानरंजन,** नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1978, पृ.- 22
18. सं. निर्मोही देश, **पल प्रतिपल,** अंक : 45, जुलाई-सितंबर, 1998, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृ.- 13
19. सं. मिश्र डॉ. सत्यप्रकाश, शर्मा राजेन्द्र (रज्जू), **ज्ञानरंजन एक औसत आदमी के आईने में, कहानीकार ज्ञानरंजन,** नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1978, पृ.- 26
20. वही, पृ.- 26
21. वही, पृ.- 27
22. वही, पृ.- 25
23. सं. निर्मोही देश, **पल प्रतिपल,** अंक : 45, जुलाई-सितंबर, 1998, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृ.-17

23(i). वही, पृ.- 20

24. वही, पृ.- 24
25. वही, पृ.- 24
26. वही, पृ.- 26
27. वही, पृ.- 03
28. ज्ञानरंजन, **कबाड़ख़ाना,** राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम परिवर्द्धित संस्करण : 2002, पृ.- 10
29. वही, पृ.- 129
30. वही, पृ.- 10

31. श्री शशांक से दिनांक 16.08.1996 को धनपाड़ा, हरदा में हुई ज्ञानरंजन की बातचीत या साक्षात्कार का अंश, पृ.- 2 - 3
32. वही, पृ.- 2 - 3
33. वही, पृ.- 2 - 3
34. वही, पृ.- 2 - 3
35. वही, पृ.- 2 - 3
36. सं. मिश्र डॉ. सत्यप्रकाश, शर्मा राजेन्द्र (रज्जू), **ज्ञानरंजन एक औसत आदमी के आईने में, कहानीकार ज्ञानरंजन,** नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1978, पृ.- 21
37. ज्ञानरंजन, **कबाड़ख़ाना,** राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम परिवर्द्धित संस्करण : 2002, पृ.- 64
38. वही, पृ.- 64
39. वही, पृ.- 64
40. वही, पृ.- 64
41. वही, पृ.- 12
42. श्री शशांक से दिनांक 16.08.1996 को धनपाड़ा, हरदा में हुई ज्ञानरंजन की बातचीत या साक्षात्कार का अंश, पृ.- 16
43. ज्ञानरंजन, **कबाड़ख़ाना,** राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम परिवर्द्धित संस्करण : 2002, पृ.- 31
44. वही, पृ.- 129
45. वही, पृ.- 129 - 130
46. वही, पृ.- 129 -130
47. वही, पृ.- 129

48. वही, पृ.- 133
49. सं. निर्मोही देश, **पल प्रतिपल**, अंक : 45, जुलाई-सितंबर, 1998, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृ.- 21
50. ज्ञानरंजन, **कबाड़ख़ाना**, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम परिवर्द्धित संस्करण : 2002, पृ.- 133
51. सं. निर्मोही देश, **पल प्रतिपल**, अंक : 45, जुलाई-सितंबर, 1998, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृ.- 62
52. वही, पृ.- 64
53. ज्ञानरंजन, **कबाड़ख़ाना**, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम परिवर्द्धित संस्करण : 2002, पृ.- 123
54. वही, पृ.- 125
55. वही, पृ.- 31
56. वही, पृ.- 83 - 84
57. वही, पृ.- 78
58. वही, पृ.- 81
59. वही, पृ.- 81
60. वही, पृ.- 81
61. ज्ञानरंजन, **कबाड़ख़ाना**, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम परिवर्द्धित संस्करण : 2002, पृ.- 86 - 87
62. वही, पृ.- 90
63. वही, पृ.- 90
64. वही, पृ.- 52
65. वही, पृ.- 49